Vol. 3, No. 1 (January 2014) P. 22-27 Sangeet Galaxy
ISSN: 2319-9695

संगीतसमयसार में वर्णित गायकों के गुण–दोष (सौन्दर्य के परिप्रेक्ष्य में)

रूचि मिश्रा
शोध छात्रा, गायन विभाग,
संगीत एवं मंचकला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
Email: ruchimishra379@gmail.com

संगीत विषयक ग्रंथों की श्रृंखला में आचार्य पार्श्वदेव (दिगम्बर जैन आचार्य) द्वारा रचित ग्रंथ संगीतसमयसार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। 13 वीं शताब्दी में लिखा गया यह ग्रंथ संगीत की प्राचीन परम्पराओं के प्रकाशन के साथ–साथ तत्कालीन संगीत में हो रहे परिवर्तनों की प्रमाणिक सूचना भी देता है।

संगीतसमयसार ग्रंथ इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन युग में जैन साधुओं को विविध कलाओं का पूर्ण ज्ञान था। आचार्य पार्श्वदेव की इस कृति से स्पष्ट है कि संगीतशास्त्र के मौलिक व मूल सिद्धान्तों और उनके प्रयोगों का उन्हें पूर्ण ज्ञान था।

इस ग्रंथ में पार्श्वदेव ने संगीत सम्बन्धी अन्य कई तथ्यों पर प्रकाश डाला है जिसके अन्तर्गत गायकों के गुण–दोष भी एक प्रमुख बिन्दु है। यह बिन्दु इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है कि प्राचीन काल से ही संगीत और सौन्दर्य दोनों एक दूसरे के पूरक रहे हैं, क्योंकि गुण का सीधा सम्बन्ध सौन्दर्य से है। जहाँ गुण होता है वो वस्तु स्वयं ही अच्छी/सुन्दर लगने लगती है। दोष भी सौन्दर्य से परोक्ष रूप में जुड़ा है, क्योंकि दोष वहीं स्पष्ट होता है जब हमें अच्छे की पहचान हो। इसी तथ्य को और स्पष्ट करते हुए एलेक्ज़ेन्ड बॉमगार्टेन ने कहा है कि "जो अच्छे और बुरे का निर्णय करे वही सौंदर्य है।"

सौन्दर्य के विषय में डॉ० रामविलास शर्मा के कथनानुसार– "प्रकृति, मानव–जीवन तथा ललित कलाओं के आनन्ददायक गुण का नाम सौन्दर्य है। वास्तव में सौन्दर्य तत्व जीवन के प्रत्येक क्षण में रचा–बसा हुआ है, जोकि विविध रूपों में सहज ही परिलक्षित हो जाता है। वास्तव में सम्पूर्ण चराचर जगत का आरम्भ और अन्त इसी सौन्दर्य तत्व में समाहित है, इस कारण से यह जीवन के विविध पक्ष से पूर्णतः सम्बद्ध है।" इसी सौन्दर्य भाव का विस्तृत रूप में वर्णन हमें हमारे विभिन्न संगीत ग्रंथों में गायकों के गुण–दोषों के रूप में विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है। जिसमें से पार्श्वदेव कृत 'संगीतसमयसार' प्रमुख है। इस ग्रंथ के 'नवमधिकरणम्' में गायकों के 18 गुण एवं 19 अवगुण बताये गये हैं जो कि इस प्रकार हैं–

गायकों के गुण

अनिन्धाश्चैव निन्धाश्च द्विविधा गायका मताः
क्रमेण वक्ष्यते तेषां लक्ष्मोद्देशपुरः सरम्।

गायकों के दो प्रकार के विषय में बताते हुए पार्श्वदेव कहते हैं कि गायक दो प्रकार के होते हैं, अनिन्द्य और निन्द्य जिनका क्रमानुसार वर्णन निम्नोक्त है–

क्रियापरः क्रमस्थश्च गतिस्थः सुघटस्तथा
सुसषः शिक्षकश्चैव रसिको भावुकस्तथा।
रंजकः पररीतिज्ञः सुगन्धोऽनियमस्तथा
आलप्तिगायनो गीतगायनश्चौपटस्तथा।
वितालश्च विबन्धश्च मिश्रश्चानिन्द्यगायकाः
यथा शास्त्रप्रयोगेण मार्ग–देशीमेव च।

क्रियापर, क्रमस्थ, गतिस्थ, सुघट, सुसष, शिक्षक, रसिक, भावुक, रंजक, पररीतिज्ञ, सुगन्ध, अनियम, आलप्ति गायन, गीतगायन, चौपट, रीताल, विबन्ध और मिश्र ये अनिन्ध गायक हैं।

यथाशास्त्रप्रयोगेण मार्ग–देशीयमेव च
यो गायति बिना दोषान् कथ्यते स क्रियापरः।

अर्थात्– जो शास्त्रानुसार प्रयोगपूर्वक मार्ग और देशी को दोष रहित गाता है वह 'क्रियापर' है।

उत्तमोत्तमसूडादिसूडान गायति सः क्रमात
प्रतिरूपकपर्यन्तं क्रमस्थः स उदाहृतः।

अर्थात्– जो उत्त्मोत्त्म इत्यादि सूडों को क्रमपूर्वक उस के निर्धारित रुप में गाता है वह क्रमस्थ कहलाता है।

वश्यकण्ठतया सम्यक् गमकान् यः पृथक् पृथक्
गमयेल्लक्षणोपेतं गतिस्थः स तु कीर्तितः।

अर्थात्– जो कण्ठ अधीन होने के कारण लक्षणयुक्त गमकों का प्रयोग पृथक–पृथक करता है, वह गतिस्थ है।

स्वरं वर्णं च तालं च व्यक्तं घटयति त्रयम्
शोभनध्वनिसंयुक्तं सुघटं तं प्रचक्षते।

अर्थात्– जो गायक स्वर, वर्ण और ताल की घटना सुन्दर ध्वनि से युक्त करता है, वह 'सुघट' है।

सुशारीरवशात्तत्तद्रागालप्तिकृतिक्षमः
अनायासेन गीतज्ञस्सुसषः परिकीर्तितः।

अर्थात्– जो गायक अच्छा शारीर होने के कारण जो प्रत्येक राग की आलप्ति करने में अनायास ही समर्थ है, वह 'सुसष' है।

द्रुतं यः शिक्षते गीतं विषमं प्रुालं तथा
शुद्धे छायालगे सम्यक् शिक्षाकारः स कथ्यते।

अर्थात्– जो गायक शुद्ध और छायालग राग में त्वरित गति से विषम और प्रांजल गीतों को सीख लेता है, वह शिक्षाकार कहलाता है।

सुश्रवं गीतमाकर्ण्य भवेद्यः पुलकान्वितः
आनन्दाश्रुकणाकीर्णः सोऽयं रसिकगायकः।

अर्थात्– जो सुमधुर गीत को सुनकर पुलकान्वित और आनन्दाश्रुपूर्ण नयन हो जाता है, वह 'रसिक' कहलाता है।

नीरसं सरसं कुर्वन् निर्भावं भावसंयुतम्
श्रोतुश्चित्तं परिज्ञाय यो गायेत् स तु भावुकः।

अर्थात्– श्रोता के चित्त को जानने के पश्चात्, नीरस को सरस और भावहीन को भावयुक्त करने वाला गायक 'भावुक' कहलाता है।

चेतोहरेण गीतेन विदित्वा श्रोतुराशयम्
रS गीते विधत्ते यो राकस्सोऽभिधीयते।

अर्थात्– मनोहर गीत के द्वारा श्रोताओं के आशय को जानकर रंगस्थल में ही गीत का विधान करने वाला गायक 'रंजक' है।

गीतशारीरचेष्टानामाल्पतौ चानुकारकृत्
गीतोत्तमगुणैर्युक्तः पररीतिज्ञ इष्यते।

अर्थात्– आलप्ति में गीत और शारीर की चेष्टाओं का अनुकरण करने वाला, गीत के उत्तम गुणों से युक्त गायक 'पररीतिज्ञ' है।

विषमं प्रांजलं वापि सुचिरं यस्य गायतः
कण्ठे न यति माधुर्य्यं सुगन्धः स तु कीर्तितः।

अर्थात्– बहुत समय तक विषम और प्रांजल गीत गाते–गाते भी जिसके कण्ठ से माधुर्य नहीं जाता, वह 'सुगन्ध' है।

गीतादपि य आलप्ति कुर्य्यात् सौख्यविधायिनीम्
आलप्तिगायनस्सोऽयं निर्दिष्टो गीतवेदिभिः।

अर्थात्– जो गीत की अपेक्षा भी अत्यन्त मनोहर हो, वह गीताज्ञों के द्वारा 'रूपकगायन' कहा गया है।

शुद्धे छायालगे चैव गीतमालप्तिसंयुतम्
यो गायति स विज्ञेयश्चौपटो गीतवेदिभिः।

अर्थात्– जो शुद्ध और छायालग राग में आलप्ति युक्त गीत गाता है, वह 'चौपट' गायक की श्रेणी में आता है।

ध्वनिशारीरयोर्यस्य नानादेशीयरीतयः
विलगन्ति स विज्ञेयो रीतालो (वितालो) गीतवेदिभिः।

अर्थात्– जिसकी ध्वनि और शारीर (कंठ) में विभिन्न देशों की रीतियों का स्पर्श होता है, वह 'रीताल' है।

नानाविधां विभक्ताष ध्वनौ यश्चिन्तयेद् गतिम्
विबन्धः स परिज्ञेयो गीततत्त्वविचक्षणैः।

अर्थात्– जो ध्वनि में अनेक प्रकार से विभक्त गति का चिन्तन करता है, वह 'विबन्ध' है।

रागे रागान्तरच्छायां मिश्रयन् दोषवर्जिताम्
प्रवीणत्वेन यो गायेत् सोऽयं मिश्र उदाहृतः।

अर्थात्– जो एक राग में दूसरे राग की छाया का प्रयोग निर्दोष रूप में तथा कुशलतापूर्वक करता है, वह मिश्र है।

गायकों के दोष

गायकों के दोषों की चर्चा करते हुए पार्श्वदेव कहते हैं–

संदष्टः कम्पितो भीतः शंकितः सानुनासिकः
उद्धुष्टश्च तथा काकी सूत्कारी चाव्यवस्थितः
कराली झोम्बको वक्रि प्रसारी च निमीलकः
तथा निरवधानश्च वितालश्चोष्ट्रकी तथा।

अर्थात्– संदष्ट, कम्पित, भीत, शंकित, सानुनासिक, उद्धुष्ट, काकी, सूत्कारी, अव्यवस्थित, कराली, झोम्बक, वक्री, प्रसारी, निमीलक, निरवधान, विताल, उष्ट्रकी, उद्घड और मिश्रक ये 19 निन्ध गायकों की श्रेणीयाँ है। जिनका क्रमवार विवेचन इस प्रकार है–

दन्तसन्दंशतो गाता सन्दष्टः परिकीर्तितः।

अर्थात्– दाँत चबाकर गाने वाला 'सन्दष्ट' कहलाता है।

न्यूनाधिकस्वरैर्गीता कम्पितस्समुदाहृतः।

अर्थात्– कभी कम और कभी अधिक मात्रा में स्वर लगाने वाला गायक 'कम्पित' कहलाता है।

यो गायति भयविष्टस्तं भीतं गायनंजगु।

अर्थात्– भयभीत होकर गाने वाला गायक 'भीत' गायक कहलाता है।

शंकाकुलस्तु यो गायेत् स शंकित उदाहृतः।

अर्थात्– शंकाकुल होकर गाने वाला गायक 'शंकित' कहलाता है।

गीतं नासिकया गायेत् विज्ञेयः सोऽनुनासिकः।

अर्थात्– नाक से गीत गाने वाले गायक को 'सानुनासिक' कहते हैं।

उद्धुष्टः सर्वतः क्षुब्धो गायन् गायन इष्यते।

अर्थात्– सब प्रकार से क्षुब्ध होकर गाने वाला गायक 'उद्धुष्ट' कहलाता है।

काकस्येव स्वरो यस्य स काकी परिकीर्तितः।

अर्थात्– कौवे जैसे स्वर वाला गायक 'काकी' कहलाता है।

सूत्कारी सूत्कृतिप्रायो गायकः कथितो बुधैः।

अर्थात्– सू की ध्वनि कर के गाने वाला गायक 'सूत्कारी' कहलाता है।

अव्यवस्थित इत्युक्तः स्थानकेष्वव्यवस्थितः।

अर्थात्– स्थानों में व्यवस्था ना रखने वाला गायक 'अव्यवस्थित' कहलाता है।

उद्घाट्य वदनं गायन् करालीति निगद्यते।

अर्थात्– मुँह फाड़ कर गाने वाला गायक 'कराली' कहलाता है।

उत्फुल्लगल्लनयननासिको झोम्बकः स्मृतः।

अर्थात्– आँखें और नाक फुलाकर गाने वाला गायक 'झोम्बक' कहलाता है।

गानवक्रीकृतग्रीवो नाम्ना वक्री प्रकीर्तितः।

अर्थात्– गाते समय गर्दन टेढ़ी करने वाला गायक 'वक्री' कहलाता है।

गीतस्यातिप्रसारेण प्रसारीति निगद्यते।

अर्थात्– गीत को अधिक फैलाकर गाने वाला गायक 'प्रसारी' कहलाता है।

निमील्य नयने गायन् कथितोऽसौ निमीलकः।

अर्थात्– आँखें बन्द कर के गाने वाला गायक 'निमीलक' कहलाता है।

गीतावधानरहितः स स्यान्निरवधाननकः।

अर्थात्– गीत पर एकाग्र न होने वाला गायक 'निरवधानक' कहलाता है।

विताली गायकः प्रोक्तो वितालं यस्तु गायति।

अर्थात्– ताल से हट कर गाने वाला गायक 'विताल' कहलाता है।

गायन्नुष्ट्रवदासीनः उष्ट्रकी सम्प्रकीर्तितः।

अर्थात्– बैठ कर गाने वाला गायक 'उष्ट्रकी' कहलाता है।

हनुसंचालनाद् गायन् छागवद् गमकान्वितम्।
उद्घडस्सोपसाहो कीर्तितो गीतवेदिभिः।

अर्थात्– बकरे के जैसे ठोड़ी चलाकर गमकयुक्त गाने वाला उपहासास्पद गायक 'उद्घड' कहलाता है।

करोति शुद्धरागे च छायालगविमिश्रणम्
छायालगे वा कुर्य्सात् शुद्धरागविमिश्रणम्
मिश्रकः स परिज्ञेयो गीततत्त्वार्थदर्शिभिः।

अर्थात्– जो गायक शुद्ध में छायालग का व छायालग में शुद्ध का मिश्रण करता है वह 'मिश्रक' कहलाता है।

निष्कर्ष–

इस प्रकार उपरोक्त श्लोकों में गायकों के गुण–दोषों की विवेचना की गई है। जिससे उक्त समय में प्रचलित रीतियों का आभास हमें प्रमाण रूप में मिल जाता है। जब हम अपने प्राचीन शास्त्र का अध्ययन करते हैं तो हम पाते हैं कि हमारे शास्त्रकारों ने हर विषय का इतना गहन और सूक्ष्म विवेचन किया है कि उनके प्रति हृदय स्वतः ही नतमस्तक हो जाता है। यह सत्य है कि बदलते समय के साथ हमारे संगीत में भी कई प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। जिसका प्रभाव श्रोता और कलाकार पर समान रूप से पड़ा है। वर्तमान समय में हम जब इस वर्गीकरण का अवलोकन करते हैं तो यह पाते हैं कि यह कितने सार्थक हैं। जिस प्रकार शास्त्रकारों ने गुणों की संख्या कम और दोषों की संख्या ज्यादा कही है उसी प्रकार वर्तमान समय में भी गुण कम और दोषों का ज्यादा दर्शन हो रहा है। गुण–दोष की विवेचना पर दृष्टि डालने के पश्चात् यह तथ्य स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि उक्त काल में भी सौन्दर्यप्रियता के परिणामस्वरूप आचार्यों ने गान विधा और उसके वाहक (गायक) के गुण–दोषों की विवेचना प्रस्तुत की ताकि गुणों का उत्थान हो और दोषों को दूर किया जा सके। जिससे संगीत और संगीतज्ञ दोनों का उत्थान हो।

संदर्भ ग्रंथ–

- समालोचक, सौन्दर्यशास्त्र विशेषांक, पृष्ठ संख्या 176
- संगीत समयसार, पार्श्वदेव, संपादक– आचार्य वृहस्पति, नौवाँ अध्याय, पृ.सं. 53–85
- ऐस्थेटिका, बौमगार्टेन गोटलिएब एलेक्ज़ेण्डर,पृ.सं. 1–20
- कला के दार्शनिक तत्व, दासगुप्ता सुरेन्द्र, अध्याय2, पृ.सं. 73